The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 10 | October 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF(2026): 5.6
Website: www.theacademic.in

पंचपरगनिया काव्य में प्रकृति एवं प्रेम

सारण प्रमाणिक

शोधार्थी, डीएसपीएमयू, रांची, ई-मेल:-saranpramanik94@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.24462878

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Received: 31-10-2026

Accepted: 05-11-2026

Published: 20-11-2026

Keywords:

प्रकृति, झारखंड, प्रेम, वातावरण

ABSTRACT

झारखंड के सांस्कृतिक मानचित्र पर अपनी अनूठी भाषायी और लोकतात्विक पहचान रखने वाली पंचपरगनिया भाषा का काव्य-संसार अत्यंत समृद्ध, संवेदनात्मक और माटी की सुगंध से सराबोर है। यह भूभाग—जिसका केंद्र बिंदु मुख्य रूप से बुंडू, तमाड़,अड़की, राहे, सिल्ली,अनगड़ा और सोनाहातु के क्षेत्रों है—अपनी प्राकृतिक छटा, कलकल करती नदियों (जैसे कांची, करकरी और स्वर्णरेखा), पलाश और साल के जंगलों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की लोक-चेतना और लिखित काव्यधारा में 'प्रकृति' और 'प्रेम' कभी भी दो अलग-अलग या पृथक इकाइयाँ नहीं रहीं, बल्कि वे एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह एक-दूसरे में अंतर्गुम्फित हैं। इस शोध आलेख में पंचपरगनिया काव्य में प्रकृति के विविध रूपों (आलंबन, उद्दीपन और मानवीकरण) तथा प्रेम के विविध आयामों (भक्ति-प्रेम, लौकिक प्रेम, विरह-संताप और ऋतु-प्रेम) का विस्तृत और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, मध्यकालीन एवं आधुनिक कवियों की रचनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि कैसे इस अंचल के रचनाकारों ने प्रकृति को मानवीय भावनाओं के प्रकटीकरण का सबसे बड़ा माध्यम बनाया है।

प्रस्तावना और भू-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

झारखंड का छोटा नागपुर पठार केवल खनिज संपदा और भौगोलिक विविधता के लिए ही नहीं, बल्कि अपनी समृद्ध सांस्कृतिक और भाषाई विरासत के लिए भी पूरे देश में विशिष्ट पहचान रखता है।इस भूभाग की एक अत्यंत महत्वपूर्ण

Disclaimer: The opinions, interpretations, conclusions, recommendations, analyses, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not reflect the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) are solely responsible for ensuring the originality, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring that it is free from plagiarism, AI-generated content, copyright infringement, data falsification, and any other form of academic misconduct.

और मिठास से भरी भाषा है—पंचपरगनिया। जो इंडो-आर्यन भाषा परिवार की पूर्वी उपशाखा से जुड़ी मानी जाती है।तमाड़, बुंडू, सिल्ली, अनगड़ा,राहे,सोनाहातू और अड़की आदि क्षेत्रों में बोली जाने वाली यह भाषा अपनी कोमलता, प्रवाह और लोक-माधुरी के कारण श्रोताओं और पाठकों के मन को सहज ही मोह लेती है। जब इस भाषा के काव्य का गहराई से अध्ययन किया जाता है, तो यह स्पष्ट होता है कि पंचपरगनिया कविताएँ झारखंड की सोंधी माटी, यहाँ के जंगलों, पहाड़ों, नदियों, ऋतुओं और सबसे बढ़कर जनमानस के कोमलतम भावनाओं—प्रकृति और प्रेम के जीवंत दस्तावेज हैं।साहित्य समाज का दर्पण होता है और किसी भी अंचल का लोकसाहित्य वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों से गहराई से जुड़ा होता है। पंचपरगनिया क्षेत्र की हरी-भरी वादियाँ, कल-कल करती नदियाँ, ऊँचे पहाड़ और ऋतुओं का चक्र यहाँ के कवियों और गीतकारों के अंतर्मन में गहरे तक उतरे हुए हैं। इस काव्य में प्रकृति केवल एक मूक पृष्ठभूमि या सजावट की वस्तु नहीं है, बल्कि वह मानव जीवन का एक ऐसा जीवंत और सक्रिय घटक है जो प्रेम, आनंद, विरह और वेदना के हर पल में मनुष्य के साथ कदमताल करती है।प्रकृति और प्रेम का यह अंतर्संबंध पंचपरगनिय लोकसाहित्य (लोकगीतों, झूमर, करम गीतों, टुसू गीतों) से लेकर आधुनिक शिष्ट साहित्य तक एक स्वर्णिम धागे की तरह पिरोया हुआ है।

पंचपरगनिया काव्य में 'प्रकृति' केवल एक जड़ परिवेश या चित्रपट नहीं है, बल्कि वह एक जीवंत पात्रा है, जो मनुष्य के सुख-दुःख में साझीदार बनती है। इसी प्रकार 'प्रेम' इस काव्य का केंद्रीय प्राणतत्व है। चाहे वह मध्यकालीन संतों का निर्गुण-सगुण भक्ति प्रेम हो या लोकगीतों में वर्णित नायक- नायिका का सहज आकर्षण अथवा टुसू और करम पर्वों के माध्यम से प्रकट होने वाला उल्लास और विरह—प्रेम हर जगह प्रकृति की गोद में पलता और निखरता है।

1. पंचपरगनिया काव्य में प्रकृति के विविध आयाम

पंचपरगनिया कवियों ने प्रकृति का बहुत सूक्ष्म और जीवंत निरीक्षण किया है।आइए इस कविता में प्रकृति के विविध आयाम को देखते हैं।

"बसंत तके करी निमंतन
टांड़-टिकर नदी-नाला
गाछ-बिरिछ परबत माला
नर-नारी हिआँ अगनन
बसंत ! तके करी निमंतन।

रितुराज ! कर जुड़ि निवेदन
कुइली कर कुहु-कुहु

पपीहा कर पिहु-पिहु
नब फूले कर आगमन
बसंत ! तके करी निमंतन।

सखा ! भर जीवने जउबन
रिझे-रंगे नाचब-डेगब
हुलास मने झुमइर गाअब
नाना कसटअ करह नासन
बसंत ! तके करी निमंतन।

रितुपति, रितुनाथ, अनंग, मदन
आउ मिलीं आनंद नदे
गोता लगाब सुखभोगे
नाना नामे कहीहे नमन
बसंत ! तके करी निमंतन!"1

(क) प्रकृति का आलंबन रूप

जब कवि प्रकृति के स्वतंत्र और विराट स्वरूप का वर्णन करता है, तो वह आलंबन रूप कहलाता है।

उपर्युक्त कविता में संपूर्ण रचना का केंद्रबिंदु 'बसंत' (ऋतुराज) है। बसंत का आगमन ही वह मुख्य आलंबन है जिसके कारण प्रकृति, जीवों और मनुष्य के मन में उल्लास और प्रेम के भाव उत्पन्न होते हैं।कविता में आए प्राकृतिक तत्व जैसे— 'टांड़-टिकर नदी-नाला', 'गाछ-बिरिछ परबत माला', और 'नब फूले कर आगमन' (नए फूलों का खिलना) आलंबन के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि ये बसंत के अस्तित्व और उपस्थिति को प्रत्यक्ष रूप से दर्शाते हैं।

(ख) प्रकृति का उद्दीपन रूप

स्थाई भाव को तीव्र या उद्दीप्त करने वाली प्राकृतिक परिस्थितियों या क्रियाओं को उद्दीपन कहा जाता है।उपर्युक्त कविता में कुइली कर कुहु-कुहु (कोयल की कूक) और पपीहा कर पिहु-पिहु (पपीहे की पुकार) उद्दीपन का कार्य करती हैं। इन मधुर ध्वनियों से मानव और प्रकृति का मन और अधिक प्रफुल्लित एवं उत्तेजित होता है।पेड़-पौधों पर नए फूलों का खिलना,नदियों-नालों और पर्वतों की सुंदरता तथा 'नर-नारी हिआँ अगनन' (लोगों के मन में उमंग का जागना) ऐसे वातावरणीय तत्व हैं जो बसंत के आनंद को और अधिक बढ़ाते और तीव्र करते हैं।

(ग) प्रकृति का मानवीकरण (सहानुभूति रूप)

कविता के शीर्षक और हर अंत में 'बसंत तके करी निमंतन' (बसंत का निमंत्रण) कहकर बसंत ऋतु को एक सजीव अतिथि या मानव रूप में संबोधित किया गया है, जैसे वह किसी उत्सव में शामिल होने के लिए आमंत्रण स्वीकार कर रहा हो।बसंत को केवल एक मौसम न कहकर 'रितुराज' (ऋतुओं का राजा), 'रितुनाथ', 'अनंग' और 'मदन' जैसे मानवीय राजाओं और देवताओं की उपाधियों से नवाजा गया है।कविता में 'रितुराज ! कर जुड़ि निवेदन' (हाथ जोड़कर निवेदन करना) और 'सखा ! भर जीवने जउबन' (हे सखा! जीवन में यौवन भरो) जैसी पंक्तियों में प्रकृति (बसंत) के साथ एक मित्र या राजा की तरह संवाद स्थापित किया गया है, जो मानवीकरण का स्पष्ट उदाहरण है।पेड़-पौधों, नदियों और पक्षियों की हरकतों को इंसानों की तरह आनंदित होने, नाचने-गाउने, झुमइर गाने और नदी में गोता लगाने जैसी क्रियाओं से जोड़ा गया है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि कविता में बसंत और उसके प्राकृतिक रूप (नदी-नाले, पर्वत, पेड़-पौधे और फूल) आलंबन हैं, जो प्रेम और उल्लास के भाव को जगाते हैं; जबकि कोयल की कूक, पपीहे की आवाज़ और खिली हुई बहार जैसी क्रियाएँ उद्दीपन का कार्य करती हैं जो इस आनंद को और तीव्र करती हैं तथा कविता में प्रकृति को जड़ वस्तु न मानकर मानवीय भावनाओं, राजाओं और मित्रों की तरह सजीव और संवेदनशील रूप में चित्रित किया गया है।

2.पंचपरगनिया काव्य में प्रेम की बहुआयामी अभिव्यक्ति

पंचपरगनिया काव्य में प्रेम की धारा किसी एक दिशा में प्रवाहित नहीं होती, बल्कि इसके अनेक स्रोतें हैं जो मिलकर एक विराट प्रवाह बनाते हैं:

(क) मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति और प्रेम

पंचपरगनिया के मध्यकालीन कवियों (जैसे बिनंदिया, गौरांगिया,नरोत्तम, नाराइन,उदय,दीना आदि) ने वैष्णव भक्ति आंदोलन से प्रेरित होकर राधा और कृष्ण के प्रेम को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। इन पदों में यद्यपि भक्ति की चादर ओढ़ी होती है,परंतु भीतर का स्पंदन लौकिक प्रेम और मानवीय राग-विराग का ही होता है। वृन्दावन की कुंज-गलियाँ, यमुना का तट, कदंब की छाँव और कृष्ण की बंसी की धुन—ये सभी प्रकृति के उपादान हैं जो राधा-कृष्ण के प्रेम को आत्यंतिक ऊंचाई प्रदान करते हैं।

"बाँसी से रदन सुनी, सुन' राधा बिनंदिनी
साज' साज' बरजेर' गपिनी,
कुंजे बाँसी बाजिल' सजनी, कुंजे.....।
तमालेर' कुंजे जाबी, तबे से नजर पाबी

एका कुंजे जेते हबे एख'नी
कुंजे बाँसी बाजिल' सजनी, कुंजे.....।
जुही जाही कुंजे बेली साजाब' हे पुसपेरि डाली
से फूल' गाँथिये किसनेर' सजनी,
कुंजे बाँसी बाजिल' सजनी, कुंजे.....।
तुमाय बिना साजे ना हे, तुमाय बिना साजे ना हे
'बरजुराम' चले जाबे एख'नी
कुंजे बाँसी बाजिल' सजनी, कुंजे.....।"2

उपर्युक्त गीत में श्री कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम, भक्ति और गोपियों की व्याकुलता का बहुत ही सुंदर और मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।कविता की शुरुआत में बाँसुरी की रदन (आवाज़) सुनकर राधा (बिनंदिनी) और गोपियाँ सजने-संवरने लगती हैं। कुंज में बजने वाली बाँसुरी की यह धुन कृष्ण के प्रति उनके अगाध आकर्षण और प्रेम का प्रतीक है।कविता में तमालेर कुंजे (तमल के कुंज) में जाकर एकांत में कृष्ण के दर्शन पाने की बात कही गई है। यह गोपियों और राधा के उस आंतरिक समर्पण को दर्शाता है जहाँ वे हर बाधा को पार कर अपने प्रियतम से मिलने के लिए आतुर रहती हैं।कुंजों में जूही, जाही और बेली जैसे फूलों को सजाने और उनसे फूल गूँथने का उल्लेख है। यह प्रेम और भक्ति के मार्ग में प्राकृतिक सौंदर्य और प्रियतम के स्वागत के लिए की जाने वाली तैयारियों को दर्शाता है।अंतिम पंक्तियों में 'तुमाय बिना साजे ना हे' के माध्यम से यह स्पष्ट किया जाता है कि कृष्ण के बिना यह सारा श्रृंगार और जीवन सूना व अधूरा है। 'बरजुराम' (कवि)द्वारा अकेले ही कुंज की ओर जाने का प्रसंग उनके अनन्य प्रेम को प्रमाणित करता है।

इस प्रकार, यह कविता राधा और गोपियों के माध्यम से जीव और कृष्ण के अटूट प्रेम को दर्शाती है। बाँसुरी की आवाज़ केवल एक धुन नहीं, बल्कि वह दिव्य आमंत्रण है जो भक्तों को सुधि-बुधि भुलाकर ईश्वर की भक्ति में लीन होने के लिए प्रेरित करता है। कविता का निष्कर्ष यही है कि सच्चा प्रेम बिना किसी स्वार्थ के केवल अपने प्रियतम (कृष्ण) के प्रति पूर्ण समर्पण और उनकी एक झलक पाने की लालसा में निहित है।

अगली गीत में देखें-

"रजनी हइल' भोर, ककिला करत सर
सबदे उठिल' राई-किसरी
डाके बिंदे नाम'धरी।।
नलिता चंपक लता, बली गो मरमेर कुथा
आइस' प्रिये नलिता सुंदरी
डाके बिंदे नाम'धरी।।

राधारो गचन सुनी, जत' गोपी ग्वालिनी
कि बल' बलिछ' बल' पेआरी
डाके बिंदे नाम'धरी।।
'बिनंद सिंह' बले, चल' जाब' दधी छले
मधुपरे भेंटब' मुरारी
डाके बिंदे नाम'धरी।।"3

इस कविता में श्री कृष्ण के प्रति अगाध भक्ति और गोपियों तथा राधा के प्रेम का बहुत ही सुंदर और सजीव चित्रण किया गया है।कविता की शुरुआत सुबह के समय से होती है जहाँ रात बीतने पर कोयल कूकने लगती है और सभी लोग (विशेषकर राई-किसरी यानी राधा-कृष्ण) जाग जाते हैं। यह प्रातःकालीन बेला भक्तों के मन में ईश्वर के प्रति जागृति और भक्ति का प्रतीक है।कविता में राधा और अन्य गोपियों/ग्वालिणियों के आपसी संवाद और प्रेम का वर्णन है। वे एक-दूसरे को संबोधित करती हैं और प्रियतमा के रूप में अपने प्रेम भाव को व्यक्त करती हैं।कविता के अंतिम चरण में 'बिनंद सिंह' के माध्यम से दही मथने और मधुपुर (मथुरा) जाकर मुरारी (कृष्ण) से भेंट करने की लालसा का उल्लेख है। यह गोपियों के उस अनन्य प्रेम को दर्शाता है जो हर कार्य के दौरान केवल कृष्ण के स्मरण और उनके दर्शन की प्यार से जुड़ा हुआ है।कविता की हर दूसरी या तीसरी पंक्ति में 'डाके बिंदे नाम'धरी' का प्रयोग हुआ है, जो निरंतर भगवान के नाम के स्मरण और उनके प्रति समर्पण भाव को रेखांकित करता है।

(ख) लोकजीवन और ऋतु-प्रेम (टुसू और करम पर्व)

झारखंड के लोक-पर्व करम और टुसू पर्व पंचपरगनिया संस्कृति की धड़कन हैं। इन पर्वों से जुड़े गीतों में प्रकृति और प्रेम का जो संगम देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

करम गीत: भाई-बहन के पवित्र प्रेम के साथ-साथ प्रकृति की पूजा और युवा दिलों के सपनों का संवाहक होता है। जावा फेरे के समय गाए जाने वाले गीत प्रकृति की उर्वरता और मानव जीवन के प्रेम-भाव को जोड़ते हैं।

जावा उठाने के समय का एक गीत को देखें -

"इति-इति जावा, किआ-किआ जावा
जावा लाइगलो रे त कुरथी का बउरा।
सेह' रे कुरथी एक' पातेक सो पात
हरिना चरी-चरी खाय।

इति-इति जावा, किआ-किआ जावा

जावा लाइगलो रे बूटे का बउरा।
सेह' रे बूट एक पातेक सो पात
हरिना चरी-चरी खाय।

इति-इति जावा, किआ-किआ जावा
जावा लाइगलो रे जो का बउरा।
सेह' रे जो एक पातेक सो पात
हरिना चरी-चरी खाय।

इति-इति जावा, किआ-किआ जावा
जावा लाइगलो रे धाने का बउरा।
सेह' रे धानेक एक पातेक सो पात
हरिना चरी-चरी खाय।"4

यह लोकगीत प्रकृति, कृषि और वन्य जीवन के सुंदर सामंजस्य को दर्शाता है। इसमें खेतों में उगाई जाने वाली विभिन्न फसलों और उनके बौर (फूल आने के समय) का बहुत ही सजीव चित्रण किया गया है, जिन्हें देखकर हिरण आकर्षित होते हैं।

गीत की शुरुआत 'इति-इति जावा, किआ-किआ जावा' जैसी लोक-ध्वनियों से होती है, जो बच्चों या रखवालों द्वारा खेतों में जानवरों (विशेषकर पक्षियों या हिरणों) को भगाने या पुकारने के समय बोली जाती हैं। इसमें कुरथी (एक प्रकार की दलहन फसल) के पौधों में बौर लगने की बात कही गई है। कुरथी (कुलथी) के पौधों के पत्तों और कोपलों को हरिना (हिरण) चर-चर कर खाता है।इसी क्रम में आगे बूट (चना) की फसल का जिक्र किया जाता है। चने के पौधों में जब बौर लगते हैं, तो उसके एक-एक पत्तों को हिरण बड़े चाव से चुन-चुनकर खाते हैं।इसके बाद जो (जौ) की फसल का वर्णन आता है। जौ के खेतों में भी फसल के बढ़ने और बौर आने पर उसकी कोमल पत्तियों को हिरणों द्वारा चरने का दृश्य प्रस्तुत किया गया है।अंत में धान की फसल का उल्लेख किया जाता है। धान के खेतों में जब बालियाँ या बौर आने लगते हैं, तो उस सुंदर और लहलहाती फसल के पत्तों को हिरण बड़े मजे से चरते हैं।

इस प्रकार, यह गीत क्रमिक रूप से अलग-अलग फसलों (कुलथी, चना, जौ और धान) के जरिए ग्रामीण कृषि जीवन और जंगलों के पास स्थित खेतों में वन्यजीवों की प्राकृतिक गतिविधियों को उजागर करता है।

निष्कर्षत: यह लोकगीत पंचपरगनिया लोक-संस्कृति की समृद्ध परंपरा और प्रकृति प्रेम का अनूठा उदाहरण है। इसके माध्यम से यह दर्शाया गया है कि कैसे ग्रामीण इलाकों में खेती-किसानी और वन्य जीव (जैसे हिरण) एक-

दूसरे के पूरक और निकट हैं। गीत की लयबद्धता और बार-बार दोहराई जाने वाली पंक्तियाँ इसे गाने में अत्यंत मधुर बनाती हैं, जो किसानों के जीवन, उनकी फसलों की देखभाल और प्रकृति के मनोरम दृश्यों को हमारे सामने जीवंत कर देती हैं।

अगली गीत, जिसमें एक विवाहिता स्त्री की अपने मायके (नइहर) जाने की तीव्र उत्कंठा, प्रतीक्षा और वहाँ न जा पाने के कारण उत्पन्न उसके मन के दुखों का बहुत ही सुंदर और मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।आइए इस गीत को देखें -

"काँसी फूल फूटी गेल, आसा मर बाढ़ी गेल,
देखी-देखी आँखिया टाटाए।
पड़ल' भादर मास, लागल' नइहरेक आस।
कही-कही भइया के पाठाई।
काँसी फूल झड़ी गेल, आसा मर टुटी गेल,
कांदि-कांदि छतिया धवाए।"5

यहां कहा गया है कि शरद ऋतु या भादो के आगमन पर जब खेतों और नदियों के किनारे काँसी के फूल खिल जाते हैं, तो उन्हें देखकर नायिका (विवाहिता स्त्री) के मन में मायके जाने की आशा और उम्मीद बहुत बढ़ जाती है। वह बार-बार रास्ते की ओर देख-देखकर और मायके की याद में अपनी आँखें टकटकी लगाकर थक जाती है।भादों (भाद्रपद) का महीना आ गया है, जो कि त्योहारों और वर्षा का समय होता है। इस महीने में हर विवाहिता को अपने मायके (नइहर) जाने की आस और तीव्र इच्छा सताने लगती है, क्योंकि इस समय कई लोक-पर्व मनाए जाते हैं।नायिका अपने परिवार या ससुराल वालों से बार-बार कहती है कि वे उसके भाई को उसे लेने के लिए उसके ससुराल भेज दें, ताकि वह अपने मायके जा सके।समय बीत जाता है, धीरे-धीरे काँसी के फूल झड़ जाते हैं, और मायके जाने की उसकी वह सारी आशा टूट जाती है (यानी भाई उसे लेने नहीं आता और वह मायके नहीं जा पाती)। इस बात से दुखी होकर वह फूट-फूटकर रोती है, जिससे उसका सीना (दिल) बैठा जा रहा है और वह भारी व्यथा से भर जाती है।

यह गीत एक लोकगीत है जो परदेश या ससुराल में रह रही एक स्त्री के मायके के प्रेम और वहाँ जाने की उसकी विवशता को दर्शाता है। प्रकृति के बदलाव (काँसी के फूलों के खिलने और झड़ने) के माध्यम से उसके मन के उमंग और फिर निराशा के भाव को बहुत ही जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

टुसू गीत: मकर संक्रांति के अवसर पर गाए जाने वाले टुसू गीत कुंवारी कन्याओं की उमंग, प्रकृति के शीतकालीन सौंदर्य (धान की कटाई के बाद खाली खेत, हल्की ठंड और कोहरा) और उनके कोमल प्रेम तथा सपनों को अभिव्यक्त करते हैं।

आइए टुसू थापना के समय की एक गीत का रसस्वादन करते हैं -

"हामरा जे माँ टुसू थापी, अघन साँकराइते गो।
अबला बाछुरेर गबर, लबन चाउलेर गुँड़ी गो।।
तेल दिलाम सलिता दिलाम, दिलाम सरगे बाती गो।
सकल देबता सइनझा लेव माँ, लखी सरसती गो।।
गाइ आइल' बाछुरी आइल', आइल' भगबती गो।
सइनझा लिँएँ बाहिराय टुसू, घरेर कुलबती गो।।"6

यह पारंपरिक लोकगीत झारखंड और आसपास के क्षेत्रों में मनाए जाने वाले प्रसिद्ध लोक-पर्व 'टुसू पर्व' (जो मुख्य रूप से पूस या अघन के महीने में मनाया जाता है) से जुड़ा हुआ है।

गीत में एक बालिका अपनी माँ से कहती है कि वे अगहन या पूस के समय टुसू की स्थापना करती हैं। इसकी पूजा के लिए गाय के गोबर से पवित्र लेपन किया जाता है और नए चावल के आटे का प्रयोग किया जाता है।पूजा में तेल और बत्ती जलाकर प्रकाश किया जाता है। इस दौरान माँ लक्ष्मी और माँ सरस्वती सहित सभी देवी-देवताओं को आदरपूर्वक प्रणाम कर पूजा की सामग्री स्वीकार करने का निवेदन किया जाता है।गीत के अंतिम चरणों में गाय और बछड़े के घर लौटने तथा भगवती के आगमन का जिक्र है। साथ ही, घर की कुलवधुएँ और स्त्रियाँ टुसू की मूर्ति या प्रतीक को लेकर बाहर निकलती हैं, जो इस पर्व के उल्लास और सामाजिक मेल-जोल को दर्शाता है।

यह लोकगीत पंचपरगनिया संस्कृति, परंपरा और कृषि जीवन शैली का एक अत्यंत सुंदर दस्तावेज है। इसके माध्यम से ग्रामीण अंचल की महिलाओं की आस्था, प्रकृति के प्रति तथा लोक-पर्वों के प्रति उनके अटूट उत्साह को बहुत ही सहजता और मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

(ग) विरह और मिलन की आर्तता

पंचपरगनिया प्रेम-काव्य में विरह का पक्ष अत्यंत प्रबल है। झारखंड का भूगोल ऐसा रहा है कि यहाँ के पुरुष आजीविका की तलाश में बाहर (दुकानदारी, मजदूरी या नौकरी के लिए) जाते रहे हैं। ऐसे में पीछे छूटी हुई नवविवाहिता या प्रेमिका की मनोदशा का अंकन पंचपरगनिया गीतों में अत्यंत मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। सावन-भादों के महीने में प्रकृति का उद्वेलन और प्रेमिका का सूनापन एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

"पिआ पास जा, पिआ पास जा।
जारे कागा चिट्ठी लेके पिआ पास जा ।।
देखबे जखन पिआ धरबे तखन जिआ,
सिसकी-सिसकी कहबे बइनके आपन हिया।

करबे रे जहाइर पहिल निहरी के कागा,

पिआ पास जा, पिआ पास जा ।।

मन जे मर तरसे आँखि मर बरसे,

बिसरी बइसल आहएं काहे परदेसे।

का जे भूल करलं मएँ पुछबे रे तएँ कागा,

पिआ पास जा, पिआ पास जा ।।

करम बाम हलक जिआ जइर गेलक,

अढ़नों माहान दाग लागे सुधिअ निलेलक।

केके कहबुं दुखेक काथा सुन रे मर कागा,

पिआ पास जा, पिआ पास जा ।।

सहे नि पाराए मन अकुलाए,

दाग लागल अढ़नी परान हुलसाए।

सुन रे कागा उड़रे कागा जारे तएँ अभागा,

पिआ पास जा, पिआ पास जा ।।"7

यह काव्य एक मार्मिक विरह-गीत है, जिसमें एक नायिका अपने परदेश गए प्रियतम (पिआ) के वियोग में व्यथित होकर कौए (कागा) को संदेशवाहक बनाकर अपना संदेश भेजने का आग्रह कर रही है।नायिका कौए से विनती करती है कि वह उसकी चिट्ठी लेकर उसके प्रियतम के पास जाए।वह कहती है कि जब तुम मेरे प्रियतम को घर पर देखना, तब सिसक-सिसक कर अपना हृदय खोलकर मेरी पीड़ा उन्हें बताना। सुबह-सवेरे ही उठकर यह कार्य करना और मेरे पिया के पास पहुँच जाना। वियोग के कारण नायिका का मन तरस रहा है और आँखों से आँसू बरस रहे हैं। वह पूछना चाहती है कि परदेश जाकर वे उसे क्यों भूल गए हैं और उन्होंने कौन-सी भूल की है।भाग्य के प्रतिकूल होने के कारण उसका हृदय जल रहा है और इस कठिन परिस्थिति में सुध-बुध भी खोती जा रही है। वह अपने दुःख की कथा किसे सुनाए, इसलिए हे कौए! तुम मेरे पिया के पास जाओ।अब इस विरह की पीड़ा को सहा नहीं जा रहा है, मन अत्यधिक आकुल है। अंत में वह कौए से कहती है कि हे अभागे कौए! तुम तुरंत उड़ जाओ और मेरे पिया के पास मेरा संदेश पहुँचा दो।

इस कविता का निष्कर्ष यह है कि यह लोक- संस्कृति में रची-बसी एक प्रेयसी की विरह-वेदना (वियोग) की पराकाष्ठा को दर्शाती है। जहाँ संदेश भेजने का कोई आधुनिक साधन नहीं था, वहाँ पक्षियों (कौए) को माध्यम बनाकर अपने मन की टीस, प्रेम, और अपनों से बिछड़ने का दर्द व्यक्त किया गया है। यह रचना प्रेम की गहराई, निष्ठा और मानवीय भावनाओं की सच्ची तड़प को बेहद प्रभावशाली ढंग से उजागर करती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि पंचपरगनिया काव्य में प्रकृति और प्रेम एक ही चेतना के दो अलग-अलग छोर नहीं हैं, बल्कि वे परस्पर अंतर्निहित और पूरक हैं। प्रकृति के बिना पंचपरगनिया प्रेम-काव्य अपनी आत्मा खो बैठता है, और प्रेम के बिना प्रकृति मात्र एक निर्जीव भूगोल बनकर रह जाती है। यहाँ के कवियों ने लोक-बोली की सहजता का उपयोग करते हुए प्रकृति के हर उपादान—फूल, पत्ते, नदियाँ, बादल और ऋतुओं—को मानवीय भावनाओं का ऐसा जीवंत जामा पहनाया है जो पाठक के हृदय को सीधे स्पर्श करता है। वर्तमान समय में जब आधुनिकीकरण और शहरीकरण के कारण पर्यावरण और मानवीय संवेदनाएँ दोनों संकट में हैं, तब पंचपरगनिया काव्य का यह प्रकृति-प्रेम और मानवीय राग हमें अपनी जड़ों की ओर लौटने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1.महतो, परमानंद;जीबन पथेक फूल, जनजातीय भाषा
अकादमी बिहार सरकार,रांची- 1990. पृ.सं.-03
2.सिंह,पराग किशोर; पंचपरगनिया मइधकालीन कबि आर
उनखर रचना, झारखंड झरोखा, रांची -2015 ,पृ.सं.-11
3.वही,पृ. सं.-21
4.महतो, परमानंद एवं महतो,दिनबंधु; पंचपरगनिया
लोकसाहित्य एवं संस्कृति, झारखंड जनजातीय कल्याण
शोध संस्थान मोरहाबादी, रांची -2012.पृ.सं.-35
5.सं.महतो, परमानंद; पंचपरगनिया लोकगीत, झारखंड
झरोखा, रांची 2023.पृ.सं.-24
6. वही,पृ.सं.-91
7.सं.महतो, परमानंद, रचनाकार राजकिशोर सिंह,जीबन पथेक
फूल, जनजातीय भाषा अकादमी बिहार सरकार,रांची-
1990, पृ.सं.-83